International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 2, February - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

हजारी प्रसाद द्विवेदी की सांस्कृतिक आलोचना

ज्योत्सना नारायण
NET, JRF Delhi University Delhi

पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे जन–चेतना की दृष्टि से साहित्येतिहास के शोधकर्त्ता एवं व्याख्याता, मर्मी विचारक, उपन्यासकार, ललित निबन्धकार, सम्पादक तथा एक बहुअधीत एवं बहुश्रुत आचार्य के रूप में मान्य है।[1] द्विवेदीजी ने लेखन यद्यपि शुक्लजी के जीवन–काल में ही प्रारंभ कर दिया था। सूर–साहित्य द्विवेदी जी की प्रथम रचना है जिसका प्रकाशन 1930 के आस–पास हुई। इस रचना के प्रथम दो अध्याय–राधाकृष्ण का विकास स्त्री–पूजा और उसका वैष्णव रूप निश्चित रूप से सूचना–प्रधान और शोधपरक है। प्रथम अध्याय में द्विवेदी जी ने तथ्याधार प्रस्तुत करते हुए बेबर, ग्रियर्सन, केनेडी और भण्डारकर जैसे विद्वानों के इस मत का खण्डन किया है कि बाल कृष्ण की कथा, ईसा मसीह की कथा का भारतीय रूप हैं। दूसरे अध्याय में उन्होंने तन्त्रमतवाद के उद्भव का कारण, उसमें स्त्री का महत्व तथा वैष्णव मत का उससे पार्थक्य दिखाया है।[2]

शुक्लजी के देहान्त उपरान्त हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940) के प्रकाशन के साथ द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को व्यापक स्वीकृति मिली। उन्होंने हिन्दी साहितय की भूमिका में शुक्ल जी की कई साहित्येतिहास संबंधी धारणाओं से मतभेद प्रकट किये। शुक्लजी और द्विवेदीजी दोनों शुरू में ही जनसमुदाय की बाते करते हैं, लेकिन इतिहास लेखन की पद्धति में अंतर हैं। शुक्लजी यद्यपि साहित्य को जनता की चित–वृत्ति का प्रतिबिम्ब मानते हैं। किन्तु इतिहास लिखते समय उन्होंने साहित्य का स्वरूप का अध्ययन शिक्षित जनता की प्रवृतियों को ध्यान में रखकर किया है। जबकि द्विवेदी जी आदिकालीन साहित्य का अध्ययन कथानक रूढ़ियों और काव्य रूढ़ियों के द्वारा करना उचित समझते हैं।

अतः द्विवेदीजी ने मुख्यतः चार बातों पर बल दिया–

1. हिन्दी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य से संबंध करके देखा जाय।

2. हिन्दी साहित्य के माध्यम से व्यक्त चिन्ताधारा को भारतीय चिन्ता के स्वाभाविक विकास के रूप में स्वीकार किया जाय।

3. हिन्दी साहित्य को ठीक से समझने के लिए मात्र हिन्दी ग्रंथों पर निर्भर न रहकर जैन और बाध्य, अपभ्रंश साहित्य, कश्मीर के शैवों तथा दक्षिण और पूर्व के तांत्रिकों का साहित्य, नाथ योगियों का साहित्य, वैष्णव आगम, पुराण, निबन्ध–ग्रंथ तथा लौकिक कथा साहित्य यह सब कुछ देखा परखा जाय।

4. साहित्य के इतिहास को जनचेतना के इतिहास के रूप में व्याख्यायित किया जाय।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 2, February - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

एक वर्ष बाद 1941 ई0 में द्विवेदीजी की परम प्रसिद्ध पुस्तक कबीर प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के माध्यम से द्विवेदीजी का समीक्षक रूप उभर कर सामने आया।[4] कबीर के पंक्तियां–

अखड़ियां झाई परी पन्ध निहारी–निहारी

जीभड़ियां छाला पड्या नाम पुकारि–पुकारि।

शुक्लजी के अनुसार यह जिज्ञासा सच्ची रहस्य भावना का आधार है। कबीरदास ने अपने भाव जिस अज्ञात प्रियतम को निर्वेदित किए हैं, वह मानव चेतना द्वारा संकेचित हैं। शुक्लजी कबीर में सहृदयता तो कही पाते ही नहीं, प्रशंसा भी करते हैं तो यह कहकर की कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल का विचार था कि कबीर मूर्तिपूजा का खण्डन मुसलमानी जोश के साथ करते थे। द्विवेदी जी का मानना है कि–कबीर की जाति, निर्गुण साधकों की परम्परा, इस्लाम का उन पर प्रभाव, उनकी योगपरक उलटवासियों की व्याख्या, ब्रह्मचार का खण्डन आदि यह सब कबीर ने पूर्ववर्ती साधकों से ग्रहण किया था। जाति–भेद और ऊंच–नीच तथा ब्राह्म कर्मकाण्ड पर प्रहार करने की इस देश में बहुत पुरानी परम्परा हैं। इसलिए कबीर ने जीवन काशी में बिताया और मृत्यु के समय मगहर गए होंगे। यह बात द्विवेदीजी ने समझाई कि कवि की रचना उसके व्यक्तित्व से और उसका व्यक्तित्व अपने देशकाल की उपज होता है तो निश्चित हैं कि प्रत्येक रचना पर अपने विशिष्ट काल की विशेषता की छाप रहती हैं और उसे देश, काल एवं परिवेश से अलग करके नहीं परखा जा सकता। यानी कालिदास एक खास जाति और खास काल में ही हो सकते थे। एस्किमों जाति के बच्चे को चाहे जितनी भी संस्कृत रटा दीजिए वह कालिदास नही बन सकता। अतः उनका विचार है कि "किसी रचना का सम्पूर्ण आनंद पाने के लिए रचियता के साथ हमारा घनिष्ठ परिचय और सहानुभूति मनुष्यता के नाते भी आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1952)

हिन्दी के आरंभिक साहित्य संबंधी उलझनों का समाधान प्रस्तुत करने वाला इतिहास ग्रंथ हैं। शुक्लजी का विचार था कि भक्ति की भावना हिन्दी–भाषी क्षेत्र में मुसलमानों से पराजय के कारण पैदा हुई। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी–सी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था। लेकिन भक्ति पूर्व धर्मसाधनाओं का विश्लेषण करने वाले द्विवेदीजी ने देखा कि यदी मुसलमान न आए होते तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज हैं। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के उद्भवकाल के पूर्व जाकर उसकी प्रवृतियों और उनके स्वाभाविक विकास को देखा है। उनका मत है कि हिन्दी साहित्य निराशा और पराजय मनोवृति का साहित्य नहीं है। इस क्षेत्र की जातीय चिन्ताधारा का स्वाभाविक विकास हमें साहित्य में मिलता है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 2, February - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

मनुष्य को साहित्य को केन्द्र में प्रतिष्ठित करने के कारण ही आचार्य द्विवेदी आलोचना की समग्र और संतुलित दृष्टि के निर्माण पर बल देते हैं। वे साहित्य को सामाजिक संदर्भों में देखने और परखने का आग्रह करते हैं। सामाजिकता का यह आग्रह ही उन्हें मानवतावादी बनाता है। वे जीवन्त मनुष्य और उसके समूह समाज को मनुष्य की सारी साधनाओं का केन्द्र और लक्ष्य मानते हैं। साहित्य भी उन्हीं रेखाओं में से एक है जो संस्कृति का चित्र उभारते हैं। वे कहते हैं साहित्य को महान बनाने के मूल में साहित्यकार का महान संकल्प होता है। कबीर उन्हें इसलिए प्रिय हैं उन्होंने सारे भेद–प्रभेदों से ऊपर उठकर मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। सूरदिस ने राग–चेतना और कालिदास ने अपनी अनुपम नाट्य कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् मनुष्य और पकृति के साथ एकसूत्रता का विधान करती हैं और विश्वव्यापी भाव–चेतना के साथ व्यक्ति की भाव–चेतना का तादाम्य स्थापित करती है। द्विवेदीजी इसी विकास यात्रा को मनुष्य की जय यात्रा कहते हैं। यही कारण हैं कि द्विवेदीजी की गणना हिन्दी के प्रगतिशील आलोचकों में की जा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार–रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 83.
2. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार–रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, 2014 पृष्ठ 85.
3. हिन्दी आलोचना–विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 141.
4. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार–रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 84,86.
5. हिन्दी आलोचना–विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 146.